आकलन की पारम्परिक प्रक्रिया*
असफ़ल कौन—विद्यार्थी या व्यवस्था?

एन.सी.ई.आर.टी.

कक्षा में पाठ्यपुस्तक खुली, शिक्षिका ने निर्देश दिए अध्याय को पठन करने के। पठन के पश्चात् गृह कार्य और फिर कुछ दिनों बाद उसी अध्याय की इकाई परीक्षा। गुणवत्ता शिक्षा पर तमाम गोष्ठियों, बैठकों, दस्तावेजों के बावजूद हो रहा है जैसा ऊपर लिखा गया है। यह तो हुई पढ़ने-पढ़ाने की बात। इसके बाद जो बच्चों के सीखने का आकलन किया जाता है वह कुछ अलग ही कहानी कहता है। जिस तरह के प्रश्न दिए जाते हैं और फिर बच्चों द्वारा दिए गए उत्तरों को जिस तरह से आकलित किया जाता है उसमें परिणाम काफी असंतोषजनक होते हैं तथा सफलता का अनुभव देने के लिए तैयार की गई व्यवस्था अपने ही विद्यार्थियों में असफलता के भाव भर देती है और स्वयं का प्रश्नचिह्न कि असफल कौन—विद्यार्थी या व्यवस्था? इस विषय पर चर्चा आगे बढ़ाने के उद्देश्य से यह लेख यहाँ प्रस्तुत है जिसे एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा आरम्भ किए गए प्राथमिक कक्षाओं में आकलन विषय पर संवादों की कड़ियों में से लिया गया है।

नगर निगम के एक प्राथमिक विद्यालय में 'प्राथमिक स्तर पर मूल्याँकन की प्रक्रिया' नामक विषय पर एक बैठक का आयोजन किया गया था। इस बैठक में भाग ले रहे थे—चौथी और पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी तथा उनके अभिभावक। साथ ही पहली से पाँचवी तक की कक्षाओं के अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी। अभिवादन संबंधी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद बैठक की संचालिका ने सभी को एक-एक पर्ची दी। पर्चियों के रंग अलग-अलग थे। पर्चियाँ बाँटने के बाद कहा गया कि संचालिका एक शब्द बोलेंगी। उस शब्द को सुनकर मन में जो भाव पहले कौंधे, उसे पर्ची पर लिख दिया जाए।

शब्द था .... 'परीक्षा'

**आकलन* स्रोत पुस्तिका (प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए) भाषा हिंदी एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली, जनवरी 2009 से साभार प्रकाशित (पृ. 25-30)

मात्र एक मिनट का समय देकर पर्चियाँ वापस ले लीं गईं। पर्चियों में लिखे भाव जानने के लिए आप उत्सुक होंगे। विद्यार्थियों की पर्चियों पर कुछ इस प्रकार की टिप्पणियाँ थीं—**पास या फेल, ओफ! घोटे लगाने का समय आ गया, खेल-कूद की छुट्टी, टी.वी. पर ताला, थोड़े दिन घर के काम से छुटकारा, रटटू तोते के तो मजे आ गए, ज्योमैट्री बॉक्स की तो तैयारी कर लो, रोज वाली कॉपी की बात मैडम वाली कॉपी पर, घोटे लगाओ नंबर पाओ, नालायक नंबर वन, लाल-लाल गोले, जीरो बटा संनाटा, पेट में मरोड़,** आदि-आदि। शिक्षकों की पर्चियों पर कुछ इस तरह के भाव थे—प्रश्न पत्र बनाओ, दस-दस लिस्टें बनाओ, गलतियाँ निकालो, नकल पकडो, बेतुकी एक्सरसाइज, नो यूज, चेकिंग, उच्च रक्तचाप, घबराहट के दिन आदि-आदि। अब आप यह भी जानना चाहेंगे कि अभिभावकों ने अपनी पर्चियों में क्या-क्या लिखा होगा। (बहुत से अभिभावक लिखना नहीं जानते थे। उन्होंने मौखिक रूप से अपनी बात कही।) **तनाव, प्रतिष्ठा का सवाल, उम्मीदों पर पानी नहीं फिर जाए, टेंशन, ट्यूशन का इंतजाम, मोमबत्ती और लालटेन का जुगाड़, बिना देखे लिखना** आदि। शायद हम सबकी प्रतिक्रियाएँ इनसे अलग नहीं होंगी। दरअसल परीक्षा का स्वरूप कुछ है ही इस प्रकार का कि नकारात्मक भाव यानी कि न चाहने वाली बातें ही सामने अधिक आती हैं।

बच्चों को स्कूल में प्रवेश लेते ही पता चल जाता है कि स्कूल में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—परीक्षा पास करना। दो-तीन दिन के भीतर ही वे इस कड़वी सच्चाई को भाँप लेते हैं कि उन्हें जो कुछ भी सिखाया -पढ़ाया जाएगा उसका 'टेस्ट' होगा और 'टेस्ट' के नतीजे ही उनकी योग्यता का सबूत होंगें। वे इस बात पर भी विचार करते होंगें कि उनकी छोटी-मोटी किताबों के पाठों में ऐसा कौन-सा हौवा छिपा है जिसके सामने उनके बहुत से करिश्माई तजुर्बे बौने हो जाते हैं, जैसे—सीलन भरी मुँडेरों पर कुशलतापूर्वक चढ़कर पतंगबाजी करना, छोटे-छोटे हाथों से अखबारी कागज के लिफाफे बनाना, जलावन की लकड़ियाँ चुनकर लाना, पशुओं को चराई करवाना, सार्वजनिक नल से पानी भरकर लाना, घर-बाहर के सैंकड़ों कार्यों को करना, आसपास की पचासों घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर माता-पिता तक पहुँचाना, भीड़ भरी सड़के पार कर लेना और सबसे बड़ी बात जटिल हालात में भी जी लेना (सरवाइव कर पाना)।

ऐसी कुशलताओं के धनी बच्चे आखिर किताबों की सूचनाओं के किले में प्रवेश क्यों नहीं कर पाते है और जो प्रवेश पाते हैं वे उन्हे भेद क्यों नहीं पाते।

इस प्रकार के सवाल सभी के मन में उठते ही होंगे और सभी इस बात पर भी विचार करते होंगे कि तथ्यों की समझ रखने वाले और कठिन से कठिन हालात में भी जी लेने वाले बच्चे स्कूली परीक्षा में असफल क्यों हो जाते हैं।

इसका जवाब हासिल करने के लिए जरुरी है कि हम परीक्षा की मौजूदा आकलन प्रक्रिया को टटोलें।

- आकलन के संबंध में अभी तक जो कुछ भी हो रहा है वह पूरी तरह से औपचारिक

ताने-बाने से गूँथा हुआ है। बाकायदा निश्चित अवधि के अंतराल पर दिन तय किए जाते हैं और घोषणा की जाती है कि अमुक दिन आपकी मौखिक/लिखित परीक्षा होगी। इस औपचारिक घोषणा के डरावने रूप को पहली कक्षा के बच्चे भी सहते हैं और ऊपर की कक्षाओं के बच्चे भी। इस प्रक्रिया में मूल्याँकन सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा ही नहीं आता। आमतौर पर सीखने-सीखाने की प्रक्रिया के दौरान ही अवलोकन, संवाद, समूह कार्य आदि के माध्यम से विद्यार्थी के सीखने की प्रगति या व्यवहार में परिवर्तन को आँका जा सकता है पर 'अवलोकन' और 'संवाद' को तो पूरी तरह नकार दिया जाता है।

- औपचारिक घोषणा से उपजे भय में बढ़ोतरी करती है 'प्रश्न संस्कृति'। हर प्रकार की परीक्षा का मुख्य बिंदु होता है-'प्रश्न पत्र'। बच्चे क्या सीख पाए हैं ये जानने के लिए वर्ष को तीन बड़ी इकाइयों में बाँट दिया गया है। (कहीं-कहीं इन तीन बड़ी इकाइयों के साथ-साथ छोटी-बड़ी मासिक इकाइयाँ भी होती हैं।) तीन बड़ी इकाइयाँ कहलाती हैं।- यूनिट-1, यूनिट-2, यूनिट-3। सरकारी विद्यालय के बच्चे हो या प्राइवेट विद्यालय के बच्चे, वे इन्हीं 'यूटी' (UT) के नाम से जाने जाते हैं। शायद आप सुनते भी होंगे- आजकल यूटी के कारण दिमाग सुन्न हो गया है।
- हर यूटी का अपना एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार कहना कहीं अधिक उपयुक्त होगा कि हर यूनिट में कितने और कौन से पाठों के आधार पर परीक्षा ली जाए, यह पाठयक्रम कहीं किसी केंद्र से तय होकर आता है। अब यह सवाल तो जरुर उठना चाहीए कि क्या यह 'केंद्र' इस बात की जानकारी रखता है कि प्रत्येक विद्यालय की सभी कक्षाओं में विद्यार्थी किस गति से सीख रहे हैं, क्या-क्या सीख चुके हैं, कहाँ-कहाँ दिक्कतें आ रही हैं। दूसरा सवाल यह भी कि एक यूनिट के भीतर आने वाले पाठ या गतिविधियों का संबंध दूसरी यूनिट के अंतर्गत आने वाले पाठ से अगर है तो क्या एसे पहली यूनिट की परीक्षा से जोड़ा जाता है? दोनों सवालों के उत्तर 'नहीं' में ही हैं।
- यह जरुरी है कि हर विद्यालय के अध्यापक को स्वतंत्रता हो कि वह पहली यूनिट परीक्षा में किन-किन पाठों के आधार पर और किन तकनीकों एवं गतिविधियों को आकलन का बिंदु बनाना चाहेगी/चाहेगा। वैसे तो सजग अध्यापक सीखने-सीखाने की प्रक्रिया के साथ ही यह जाँच करते चलते हैं कि मेरे विद्यार्थी क्या सीख पा रहे हैं और क्या नहीं सीख पा रहे हैं, किस बिंदु पर उन्हें किस तरह की दिक्कते आ रही हैं और उन दिक्कतों को कैसे दूर किया जा सकता है।
- यह तो रही पाठों के चयन या निर्धारण की बात। अब प्रश्न बनाने की बात आती है। पाठ के किसी भी कोने से संदर्भ रहित कोई सा भी प्रश्न उठा लिया जाता है। घिसे-पिटे तरीके से पुनः उसकी प्रस्तुति कर दी जाती

है। प्रश्न बनाने की प्रक्रिया में यूनिट के सभी अध्यायों को शामिल करने का असफल प्रयास किया जाता है। जिसमें वास्तविक सृजनात्मक चिंतन कहीं-कहीं झलकता। प्रश्न कुछ इस प्रकार के होते हैं। जो रटने के कौशल पर आधारित होते हैं और इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विद्यार्थियों को न तो सोचने-समझने की जरुरत पड़ती है और न ही अपने दैनिक जीवन से जोड़ने की। वे विद्यार्थियों के अनुभवों से परे होते हैं इसलिए वे विद्यार्थियों को वस्तु/घटना के संबंध में, अपनी धारणा के संबंध में, अपनी धारणा बनाने और अपने विचारों को प्रतिबिंबित तथा प्रमाणित करने से रोकते हैं। रटने के कौशल में प्रवीण विद्यार्थी इन प्रश्नों के उत्तरों की यांत्रिक प्रस्तुति कर 'होनहार', 'मेधावी' जैसे खिताब पाते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते वे असफलता के डंक की चुभन को सहते-सहते सीखने की प्रक्रिया से ही बाहर हो जाते हैं। इन प्रश्नों-पत्रों में समस्या निराकरण, विवेकपूर्ण सोच, कल्पनाशीलता को बढ़ाने वाले, संदर्भ को विस्तार देने वाले, विश्लेषण, वर्गीकरण करने की क्षमता का पोषण करने वाले प्रश्नों का लगभग अभाव ही दिखाई देता है। उदाहरण के तौर पर—

प्लेटफार्म पर उतरकर उसने किसको बुलाया?

अब देखिए, क्या यहाँ किसी तरह का संदर्भ नज़र आ रहा है? नहीं न! आपसे ही अगर यह सवाल पूछ लिया जाए तो आप क्या जवाब देंगे? ऐसे ही सवाल की एक और बानगी देखिए—

राजा ने किस रंग का चोगा पहना था?

उपर्युक्त सवाल पूछकर आप कौन-सा भाषायी कौशल जाँचना चाह रहे हैं? सिर्फ विद्यार्थी के पठनकौशल का ही न, क्योंकि चोगे का रंग उसने पाठ में पढ़ा होगा। अब अगर इस सवाल को कुछ इस तरह से पूछें—

राजा को लाल रंग का चोगा ही क्यों पसंद था?

भले ही सीधे-सपाट तरीके से उर्पुक्त सवाल का उत्तर पाठ में न मिल पाए पर अगर विद्यार्थी ने पाठ को समझकर पढ़ा है तो अपनी कल्पना, तर्क शक्ति और अनुमान के आधार पर कारण खोज ही लेगा कि राजा को लाल रंग का चोगा क्यों पसंद था।

अब बात करेंगे प्रश्नों के साथ-साथ अँकों की। पूरा प्रश्न-पत्र एक निश्चित अँक सीमा में बँधा हुआ होता है और अँकों की सहूलियत को मद्देनज़र रखते हुए प्रश्नों से प्राप्त होने वालों उत्तरों की सीमा भी तय हो जाती है।

उदाहरण के तौर पर—

- *जंगल में रहने वाले दो जानवरों के नाम बताइये।*
- *मदर टेरेसा के चरित्र की तीन विशेषताएँ लिखिए।*
- *जल के चार स्रोतों के नाम बताइये।*
- *वृक्षों से होने वाले पाँच लाभ लिखिए।*
- *जातिवाचक संज्ञा के चार उदाहरण बताइये।*
- *नीचे लिखे शब्दों के दो-दो पर्यायवाची शब्द बताइये।*

उपर्युक्त उदाहरणों में दो, तीन, चार, पाचँ की सँख्या ने अँक देने/काटने में भले ही सुविधा प्रदान कर दी हो पर विद्यार्थियों की उद्यमिता और विचार करने की क्षमता को उभारने का मौका गँवा दिया है।

कविता के संदर्भ में भी अँकों की सुविधा को ही महत्त्व दिया जाता है, जैसे—

- *अपनी पाठ्यपुस्तक से याद की हुई किसी भी कविता की छः पंक्तियाँ लिखो/सुनाओ।* यहाँ विद्यार्थी के सामने पाठ्यपुस्तक से ही कविता याद करने और उसे छठी पंक्ति पर ही समाप्त करने की बेबसी है भले ही वह छठी पंक्ति किसी नए अंतरे की शुरुआत क्यों न हो।
- क्या पाठ्यपुस्तक से इतर कोई भी पसंदीदा कविता सुर, लय, ताल, के साथ सुनवाकर हम किसी भी अधिगम अनुभव का आकलन नहीं कर सकते? क्या प्रश्न-पत्र विद्यार्थियों के सजीव अनुभवों को स्थान नहीं दे सकता?

अब बात करते हैं आकलन में भिन्न-भिन्न गतियों और तकनीकों की। हम सभी जानते हैं कि विद्यार्थियों के सीखने की गति अलग-अगल होती है। हर विषयवस्तु को सीखने-सिखाने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। परंतु मौजूदा मूल्याँकन व्यवस्था में इस अवधारणा का कोई स्थान नहीं है। विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के परीक्षणों की अनुभूति से वंचित रह जाते हैं। पहली और दूसरी कक्षाओं में फिर भी मौखिक परीक्षण को स्थान मिल जाता है पर तीसरी कक्षा के बाद तो लिखित परीक्षा पर ही निर्भरता बनी रहती है। कहीं-कहीं प्रायोगिक कार्य को थोड़ी बहुत तरजीह दे दी जाती है पर वहाँ अध्यापक-अध्यापिकाओं के पूर्वाग्रह उसे बेमानी बना देते हैं। जिन विद्यार्थियों की वाचिक निपुणता लेखन से कहीं ज्यादा अच्छी है, जिनके काम करने की गति तो बहुत धीमी है वे बडी सूक्ष्म दृष्टि के साथ करते हैं, जिन विद्यार्थियों में गहन अवलोकन करने, वर्गीकरण करने, तर्क प्रस्तुत करने, कल्पना करने और व्याख्या करने के कौशल हैं पर रटने की क्षमता का अभाव है, ऐसे विद्यार्थी अँकों की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते। बहुत-से बच्चे समूह में बेहतर कार्य निष्पादन कर पाते हैं पर हमारी मौजूदा मूल्याँकन प्रक्रिया में ऐसी वैयक्तिक सुविधा का सर्वथा अभाव है।

तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं कक्षा के प्रश्न-पत्रों की एक बानगी प्रस्तुत है—

- पहला प्रश्न अनुच्छेद या निबंध लेखन का होता है जिसमें अक्सर विषयों का दायरा बहुत ही सीमित होता है जैसे—*रक्षाबंधन, मेरा प्रिय मित्र, मेरा विद्यालय, ईद, होली, 15 अगस्त।*
- दूसरा प्रश्न-पत्र लेखन से संबंधित है। यहाँ विषय सीमा संकुचित होने के साथ-साथ बहुत हास्यास्पद भी है, जैसे—*बीमार होने पर मुख्याध्यापक को प्रार्थना-पत्र, फीस माफ करने के लिए मुख्याध्यापक को पत्र, बड़े भाई के विवाह के कारण पत्र।*

क्या विद्यार्थियों के मित्र, सगे-संबंधी नहीं होते जिन्हें वे पत्र लिख सकें, क्या किसी स्थिति विशेष में ही पत्र लिखा जाता है, यूँ ही अपने मन की बात या दिलचस्प वाकया बताने के लिए पत्र नहीं लिखा जा सकता? यदि किसी अभियोजन को सिद्ध करने के लिए पत्र लिखना ही है तो विद्यार्थी क्रीड़ा स्थल, खिलौनों, भ्रमण के आयोजन के संबंध में भी तो मुख्य अध्यापक को पत्र लिख सकते हैं।

अब बारी आती है वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की, जिसमें सही/गलत के निशान लगाने हैं—

- *जंगल के जानवर चींटी से परेशान थे।*
- *हाथी सभी जानवरो से प्यार करता था।*
- *बूढ़ा कबूतर चतुर था।*
- *कुएँ के अंदर चाँद था।*

सभी कथन पाठ्यपुस्तक पर आधारित हैं। पाठ से थोड़ा भी इधर-उधर हुए तो उत्तर गलत भी हो सकता है। व्याकरण संबंधी प्रश्न कुछ इस प्रकार होते हैं—*संज्ञा या सर्वनाम की परिभाषा लिखकर पाँच उदाहरण दीजिए।*

भाषा की बारीकियाँ कुछ इस प्रकार उभारी जाती हैं—

नीचे लिखे शब्दों के अर्थ लिखो—
जीमन, शिकायत, भली, आलस

सार यह है कि पूरे प्रश्न-पत्र में कल्पनाशीलता की कोई गुँजाइश नज़र नहीं आती। बेजान, नीरस-सा प्रश्न-पत्र पूरी मूल्याँकन प्रक्रिया में छाया रहता है। पहली और दूसरी कक्षा में श्रुतलेख एवं सुलेख और पठन करवाया जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि तीनों के लिए टूटे-फूटे अलग-अलग गद्यांश चुने जाते हैं। श्रुतलेख में ही सुलेख के अँक दिए जा सकते हैं। पाठ्यपुस्तक से बाहर का गद्य/पद्य पठन के लिए लिया जा सकता है। सीखने की प्रक्रिया के दौरान ही अवलोकन, मौखिक अभिव्यक्ति, समूह कार्य, काम के प्रति दृष्टिकोण आदि के आधार पर आकलन किया जा सकता है। मौजूदा मूल्याँकन प्रक्रिया में शारीरिक एवं मानसिक रूप से चुनौती वाले बच्चों के लिए भी तिल भर बदलाव की जरुरत नहीं समझी जाती। हाँ, अँक देने में गैर-जरुरी उदारता जरूर दिखाई जाती है—अरे, एक नंबर तो फालतू दे ही दो इसे। बेचारा...। हमें यह समझना जरूरी है कि वे बेचारे नहीं हैं और अँकों के मोहताज भी नहीं। वे हमसे उसी तरह के सामान्य व्यवहार की अपेक्षा करते हैं जैसा कि दूसरों के साथ किया जाता है। वर्तमान मूल्याँकन प्रक्रिया एक प्रकार से कुंठित प्रतियोगिता को जन्म देती है।

इस प्रतियोगिता में रटने के आधार पर अधिक अँक लाने वाले को तो 'गौरव' के कुछ पल प्राप्त हो जाते हैं पर कम अँक लाने वाले आत्मग्लानि के बोझ तले दबकर नीरस और थकावट भरी अधिगम प्रक्रिया को ठेलते रहते हैं। अपनी गति, अपने तरीकों से अनुभव प्राप्त करने की चाहत भी किसी गहराई में है। अब तो वह समय आ ही गया है जब किसी भी प्रशासनिक सुविधा या असुविधा की दुहाई न दी जाए और बदलाव को सहज स्वीकार किया जाए और यह विश्वास किया जाए कि हर बच्चे में सीखने की संभावनाएँ मौजूद हैं।